

जैन

पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

सुख और शांति
प्राप्त करने का एकमात्र
उपाय तो वस्तु स्वभाव
का सम्यक्ज्ञान-श्रद्धान
ही है।

ह्र बारह भावना अनुशीलन : पृष्ठ ह्र 28

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

वर्ष : 31, अंक : 11

सम्पादक : पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

आजीवन शुल्क : 251 रुपये

सितम्बर (प्रथम), 2008

प्रबन्ध सम्पादक : पण्डित संजीवकुमार गोधा

वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

महाविद्यालय के भूतपूर्व शास्त्री/स्नातक विद्वानों के संगठन ह्र

पण्डित टोडरमल स्नातक परिषद् का गठन

आपको यह सुखद समाचार देते हुये हमें बहुत प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि श्री टोडरमल स्मारक भवन की छत के नीचे चलनेवाले समस्त विद्यालयों के भूतपूर्व शास्त्री/स्नातक विद्वानों का 'पण्डित टोडरमल स्नातक परिषद्' के नाम से एक संगठन का गठन किया गया है।

श्री टोडरमल स्मारक भवन में संचालित महाविद्यालय पूरे देश में विद्वान बनाने के कारखाने के रूप में प्रसिद्ध है। जयपुर में प्राचीन काल से ही पाषाण के भगवान तो बनते ही रहे हैं, किन्तु विगत ३१ वर्षों से इस महाविद्यालय के माध्यम से जीवन्त भगवान बनाने का कार्य किया जा रहा है।

महाविद्यालय के माध्यम से अब तक ४९८ शास्त्री विद्वान तैयार होकर पूरे देश में शासकीय एवं प्रशासकीय सेवाओं में कार्यरत हैं। और इन सभी के माध्यम से यथासम्भव तत्त्व-प्रचार प्रसार का कार्य भी हो रहा है।

सभी स्नातक विद्वान आपस में एक दूसरे से जुड़कर तत्त्वप्रचार कर सकें, इस दृष्टि से समस्त भूतपूर्व विद्यार्थियों के एक रचनात्मक संगठन की आवश्यकता अनेक वर्षों से अनुभव की जा रही थी। समय-समय पर अनेक स्नातकों ने इस संदर्भ में अपने विचार भी व्यक्त किये।

भूतपूर्व विद्यार्थियों की इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये 'पण्डित टोडरमल स्नातक परिषद् ट्रस्ट' का गठन किया गया है, जिसका विधिवत् रजिस्ट्रेशन भी हो चुका है एवं इस ट्रस्ट के अंतर्गत 'पण्डित टोडरमल

स्नातक परिषद्' की स्थापना की गई है। इस परिषद् में श्री टोडरमल स्मारक भवन में चलनेवाले विद्यालयों के सभी शास्त्री (स्नातक) भूतपूर्व छात्र विद्वान स्वतः ही सदस्य होंगे।

परिषद् के सभी सदस्यों को जैन पथप्रदर्शक (पाक्षिक), वीतराग-विज्ञान (मासिक) एवं पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा समय-समय पर प्रकाशित विशिष्ट साहित्य निःशुल्क भेजा जायेगा, ताकि वे ट्रस्ट के द्वारा संचालित की जाने वाली तत्त्वज्ञान की गतिविधियों से सक्रियरूप से जुड़े रहे एवं समय-समय पर प्रकाशित आवश्यक सूचनायें भी उन्हें मिलती रहें। इसके अलावा भी तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार की अनेक योजनायें इस परिषद् द्वारा संचालित की जावेंगी।

इस परिषद् की प्रथम कार्यकारिणी के अध्यक्ष पण्डित अभयकुमार शास्त्री देवलाली, कार्याध्यक्ष पण्डित शान्तिकुमार पाटील जयपुर, उपाध्यक्ष पण्डित प्रदीप झांझरी उज्जैन, पण्डित अशोक लुहाड़िया मंगलायतन-अलीगढ़, डॉ. मुकेश 'तन्मय' विदिशा, महामंत्री पण्डित पीयूष जैन जयपुर एवं कोषाध्यक्ष के पद पर पण्डित धर्मेन्द्र शास्त्री जयपुर का मनोनयन किया गया है।

इसके अलावा डॉ. राकेश शास्त्री मंगलायतन-अलीगढ़, डॉ. वीरसागर जैन दिल्ली, पण्डित जिनचन्द शास्त्री कोल्हापुर, पण्डित राजकुमार शास्त्री बांसवाड़ा, पण्डित ऋषभ शास्त्री अहमदाबाद, पण्डित रतनचन्द शास्त्री कोटा, पण्डित अनिल शास्त्री भिण्ड, पण्डित ऋषभ शास्त्री छिन्दवाड़ा, पण्डित जम्बूकुमार शास्त्री चैन्नई, पण्डित विराग शास्त्री नागपुर, विदुषी स्वानुभूति जैन मुम्बई, पण्डित जिनेन्द्र शास्त्री उदयपुर एवं पण्डित अनेकान्त शास्त्री मुम्बई कार्यकारिणी के सदस्य हैं।

परिषद् के सभी पदाधिकारियों एवं सदस्यों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। परिषद् की इस नवगठित कार्यकारिणी की प्रथम बैठक एवं अधिवेशन का आयोजन ५ से १४ अक्टूबर तक श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में आयोजित ११ वें शिक्षण-शिविर के दौरान दशहरे के अवसर पर ९ अक्टूबर को होने जा रहा है।

सभी भूतपूर्व छात्रों को अधिवेशन में उपस्थित होने हेतु हमारा हार्दिक आमंत्रण है।

ह्र यशपाल जैन-महामंत्री,
पण्डित टोडरमल स्नातक परिषद् ट्रस्ट

सम्पादकीय -

चलते-फिरते सिद्धों से गुरु

13

डॉ. पण्डित रतनचन्द्र भारिल्लू

(गतांक से आगे ...)

मुनि प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यान रूप अन्तरंग तप तथा अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, विविक्त शय्यासन और कायक्लेशरूप ह्य इसप्रकार बारह प्रकार के बहिरंग तप आदरते हैं। कभी-कभी ध्यानमुद्रा धारण करके प्रतिमावत् निश्चल होते हैं। मुनियों को छठवें गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त से अधिक नहीं होता। बार-बार सातवें गुणस्थान की निर्विकल्प दशा होती ही रहती है। इसी कारण वे रात्रि के अन्तिम प्रहर में जब शयन करते हैं, उस समय भी वे अन्तर्मुहूर्त में सातवें गुणस्थान में चले जाते हैं।

अन्तर-बाह्य चारित्र का पालन करनेवाले मुनिराज हम सबके लिए भगवान अरहंत-सिद्ध के समान ही वन्दन-पूजन करने योग्य होते हैं। हम प्रतिदिन देव-शास्त्र-गुरु पूजा में उनकी पूजा भक्तिभाव से करते भी हैं।

दिगम्बर मुनिराज के पास संयम की साधन पिच्छी और शुद्धि का साधन कमण्डल के सिवाय अन्य कोई परिग्रह नहीं होता। वे घोर उपसर्ग और परिषहों में भी अन्तर-बाह्य चारित्र से विचलित नहीं होते। अनन्तानुबंधी आदि तीनकषाय चौकड़ी के अभाव में अन्तरंग शुद्धिपूर्वक अद्वैत मूलगुण एवं तेरह प्रकार के चारित्र का पालन मुनिराज के बाह्य लक्षण हैं। मुनिराज का यह स्वरूप क्षेत्र एवं काल से प्रभावित नहीं होता। विदेह क्षेत्र में एवं भरत क्षेत्र में तथा चतुर्थ काल में एवं पंचम काल में सदा एक जैसा ही रहता है। इसमें क्षेत्र काल के अनुसार शिथिलता नहीं होती, क्योंकि क्षेत्र के कारण धर्म का स्वरूप नहीं बदलता।

जैसे आग तो सर्वत्र एवं सदा उष्ण ही रहती है; उसीप्रकार धर्म तो सर्वत्र वीतरागरूप ही होता है। इसकारण मुनिधर्म का देश-काल की परिस्थितियों में भी समझौता संभव नहीं है।

मुनिपद विशुद्ध आत्मकल्याण के लिए धारण किया जाता है। यह पद अलौकिक है; अतः उनके सहज ही लौकिक प्रवृत्ति नहीं देखी जाती है। उन्हें किसी भी लौकिक कार्य से कोई प्रयोजन ही नहीं होता।

मुनिराज समस्त अंतरंग-बहिरंग परिग्रह के त्यागी होने के साथ पाँचों इन्द्रियों के विषयों के त्यागी भी होते हैं। इसकारण उनको वस्त्रादि की आवश्यकता ही नहीं होती। अतः वे नग्न ही रहते हैं।

कहा जा सकता है कि लज्जा के कारण मुनिराजों को वस्त्र तो स्वीकार कर ही लेना चाहिए, पर यह सोच सही नहीं है; क्योंकि मुनिराजों

ने लज्जा परिषह पर भी विजय प्राप्त कर ली है। उनकी नग्नता निर्विकारता की सूचक है तथा लज्जा स्वयं एक स्थूल विकार है, जो मनुष्य को तन ढकने के लिए बाध्य करता है, किन्तु मुनिराज गोदी के छोटे बालक की भांति पूर्ण निर्विकारी हो गये हैं। अतएव उन्हें वस्त्र की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती।

जिसतरह गोदी के नंगे बालकों को माँ अपना दूध पिलाते हुए भी लज्जित नहीं होती, अन्य नारियाँ भी उसे गोद में लेकर खिलाती हुई लज्जित नहीं होतीं, बल्कि पवित्र प्रेम से उसे गले लगाती हैं।

यह भी कहा जा सकता है कि भले ही वे निर्विकारी हो गये; पर देखनेवालों के परिणाम तो बिगड़ते ही हैं न ! अतएव मुनिराजों को वस्त्र ग्रहण कर लेना चाहिए।

यह बात भी अविचारित रम्य है, क्योंकि जो मुनिराज के निर्विकाररूप को नहीं समझते, उन्हें मुनिराज को देखकर विकार हो सकता है, किन्तु उनके विकार के कारण मुनिराज नहीं हैं; क्योंकि जिनका स्वयं का मन विकारयुक्त है, उन्हें तो सवस्त्र पुरुषों एवं स्त्रियों को देखकर भी विकार हो सकता है। जिनको विकार पैदा होता है, उन्हें ही अपना विकार प्रक्षालित करना पड़ेगा।

दिगम्बर मुनिराज की नग्न वीतराग मुद्रा को देखकर तो देखनेवाले श्रद्धा से अभिभूत होकर एवं उनकी त्याग-तपस्या पर चकित होकर उनके चरणों में झुक जाते हैं, नतमस्तक हो जाते हैं; अतः मुनियों के दर्शकों के चित्त में विकार उत्पन्न होने का कोई कारण ही नहीं रह जाता।

यह तर्क भी दिया जाता है कि जब वस्त्रों से उन्हें राग-द्वेष नहीं है तो वस्त्रों के रहने और न रहने से उन्हें क्या आपत्ति है ?

यह बात सत्य है कि वस्त्र से उन्हें राग-द्वेष पैदा नहीं होते, परन्तु वस्त्र के प्रति राग टूट जाने पर शरीर पर वस्त्र रहते ही नहीं। शरीर पर वस्त्रों की सम्हाल राग के बिना कैसे होगी ? लोक में इसप्रकार के उदाहरण प्रचुर मात्रा में देखे जा सकते हैं। जैसे उपवास में भोजन के प्रति राग टूट जाने के कारण स्वतः ही भोजन करने की क्रिया नहीं देखी जाती।

जिनेन्द्र भगवान के द्वारा उपदिष्ट मुनिराज के अनिवार्यरूप से अद्वैत मूलगुण होते हैं, जिनका वे निर्दोष पालन करते हैं। उन २८ मूलगुणों में नग्नता भी एक गुण है।

दिगम्बर मुनिराज परिषहों अथवा उपसर्गों को दूर करने के लिए किसी भी प्रकार का उपाय नहीं करते। कोई भी वाहन एवं जूता-चप्पल आदि का उपयोग नहीं करते। सर्दी-गर्मी से बचने के लिए कोई साधन का उपयोग नहीं करते। यदि कोई अविवेकी गृहस्थ उनके लिए किसी त्याज्य वस्तु का उपयोग करता है तो वे उसको उपसर्ग समझते हैं।

धर्म और समाज के नाम पर मुनिराज अपने लिए तथा समाज के लिए धर्मशाला, वसतिका, मन्दिर, तीर्थ आदि बनाने अथवा बनवाने का कोई भी भार स्वीकार नहीं करते। उनको इसप्रकार का कोई विकल्प ही

नहीं होता; क्योंकि इन कार्यों में आरंभजनित हिंसा होती है, जिसके मुनि सर्वथा त्यागी होते हैं।

मुनिराज अट्टईस मूलगुण एवं तेरह प्रकार के चारित्र का निर्दोष पालन करते हैं; अतः वे श्रावकों द्वारा वन्दनीय हैं। यद्यपि मुनि को वन्दन, नमन आदि कराने का भाव ही नहीं; तथापि जो सच्चे गुरुओं को वन्दन नहीं करता, उसे सच्चे गुरु का अवर्णवाद करनेवाला होने से दर्शनमोह का बंध होता है।

अट्टईस मूलगुण आदि सभी गुणों की पूर्णता होने पर भी जो पुरुष यह छल करता है एवं सन्देह करता है कि अमुक मुनिराज को सम्यग्दर्शन नहीं है और सम्यग्दर्शन के बिना उन्हें कैसे नमस्कार किया जाये तो वह मुनित्व से ही इन्कार करनेवाला है; क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि अपने स्थूलज्ञान से किसी के सम्यग्दर्शन का पता लगाया जा सके।

अतः सम्यग्ज्ञान जैसे अमूर्त अतीन्द्रिय तत्त्व का पता किये बिना मुनिराज को नमस्कार नहीं किया जायेगा तो फिर लोक के सभी साधु वन्दनीय नहीं रह सकेंगे। इसीलिए मुनिराज में जहाँ जिनोपदिष्ट व्यवहारधर्म की परिपूर्णता पायी जाये तो वे अवश्य ही वन्दन के योग्य होते हैं; क्योंकि व्यवहारी की गति व्यवहार तक ही होती है। कोई कारण न दिखायी देने पर भी किसी के चारित्र के संबंध में सन्देह करना चारित्र का बहुत बड़ा अपमान है।

किसी भी लौकिक अथवा लोकोत्तर प्रयोजन के अनुरोध से मुनि का नमनता से भिन्न कोई भी वेष हमारे सम्मान का विषय नहीं हो सकता।

मुनि आत्मा के अभ्यास में परायण होते हैं। अतः वे बारम्बार स्वरूप गुप्त होते रहते हैं। सविकल्पदशा में भी मुनिधर्म की मर्यादा लांघकर बाहर नहीं जाते।

मुनिराज को आत्मा से बाहर आना बिल्कुल ही नहीं सुहाता। छठवें गुणस्थान में बाहर आना पड़ता है; परन्तु उन्हें बाहर आना बोझरूप लगता है; क्योंकि उन्हें शाश्वत आत्मा की धुन रहती है।

वस्तुतः द्रव्यलिंगी साधु के चार प्रकार हैं ह

१. मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी ह जिनके भेदज्ञान और तत्त्वज्ञान के अभाव हो, अभिप्राय में परद्रव्य में एकत्व, ममत्व, कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व की भूल हो, सच्चे वीतरागी सर्वज्ञ देव-शास्त्र-गुरु के विषय में तथा सात तत्त्वों में अन्यथा श्रद्धान होने रूप मिथ्यात्व हो, किन्तु बाह्य में मन्दकषाय के बल से मुनिपने का आचरण निर्दोष हो, शुक्ललेश्या हो तो वे मरकर नववें प्रैवेयक तक जाते हैं।

२. अविरत सम्यग्दृष्टि द्रव्यलिंगी ह पहले अज्ञानदशा में

मन्दकषाय के जोर से मुनिपना ले लिया हो और फिर सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ हो; परन्तु अन्तर से तीन कषाय चौकड़ी के अभावस्वरूप संयम के योग्य पुरुषार्थ न चलता हो, उन्हें भी द्रव्यलिंगी कहा जाता है; ऐसे सम्यग्दृष्टि द्रव्यलिंगी को केवली अथवा श्रुतकेवली के पादमूल में दर्शनमोहनीय की तीन और अनन्तानुबंधी चार, ऐसी सात प्रकृतियों का क्षय हो सकता है।

3. देशविरत सम्यग्दृष्टि द्रव्यलिंगी ह ध्रुव ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से अन्तर में दो कषाय-चौकड़ी के अभावस्वरूप शुद्धता प्रगट हुई है, उन्हें शुद्धोपयोग होता है और शुद्धपरिणति भी रहती है। परन्तु बाह्य में मुनिपने की क्रिया निर्दोष पालन करने पर भी अप्रत्याख्यानावरण चौकड़ी के उदय में अन्तर में मुनिदशा के योग्य शुद्धि का पुरुषार्थ नहीं चलता, उन्हें भी द्रव्यलिंगी मुनि कहा जाता है, उन्हें भी सात प्रकृतियों का क्षय हो सकता है।

४. छठवें-सातवें तथा इनसे ऊपर के सभी गुणस्थानों में जो बाहर में नग्न दिगम्बरदशा होती है, वह चौथा द्रव्यलिंग है।

पूज्यता का आधार तो बाहर में २८ मूलगुणों का निर्दोष पालन करना ही मुख्य है। अतः जो भी २८ मूलगुणों का निर्दोष पालन करते हैं; वे सब पूज्य हैं। अन्दर के परिणामों की पहचान तो सर्वज्ञ के सिवाय किसी को होती नहीं है; अतः 'द्रव्यलिंग' शब्द को निन्दा के अर्थ में नहीं समझना चाहिए।

अभी समय हो गया, अतः आज इतना ही, शेष अगले प्रवचन में।" ॐ नमः।

इतना कहकर आचार्यश्री ने अपना प्रवचन सम्पूर्ण किया।

प्रवचन से प्रभावित होकर आचार्यश्री की जय बोलते हुए एक श्रोता ने भावुकतावश अवरुद्ध कंठ से कहा ह "अहा! धन्य है, धन्य है; आचार्यश्री को धन्य है। आपने तो हमारी आँखें ही खोल दीं।

हम तो अब तक प्राप्त पर्याय को सुखी बनाने और लौकिक समृद्धि में ही अपने जीवन की सफलता समझ रहे थे। इसकारण ज्योतिष और मंत्र-तंत्र बताने वालों के चक्कर में ही अब तक पड़े रहे।

आज आचार्यश्री के प्रवचनों से यह जाना कि ह ये सब तो पुण्य-पाप का खेल है। आत्मा का हित तो आत्मा के जानने-पहचानने में है।

मैं इस जन्म के पहले भी था और मृत्यु के बाद भी रहूँगा। अतः मुझे अपने उज्ज्वल भविष्य के बारे में सोचना है। धन्य है, आचार्यश्री! धन्य है मुनिसंघ!"

अन्त में जिनवाणी और मुनिसंघ के जय-जयकार के साथ सभा विसर्जित हुई।

तिथि दर्पण

तिथि दर्पण

मोक्षमार्ग प्रकाशक का सार

5

दूसरा प्रवचन - डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि जब बंध कषाय और योग से होता है तो कषाय न करेंहमात्र यह क्यों लिखा है, योग की बात को क्यों छोड़ दिया।

अरे भाई ! योग के अभाव के लिये तो अनन्तवीर्य और अतुल्य बल के धनी अरहंत भगवान भी कुछ नहीं करते। शास्त्रों में लिखा है कि अरहंत भगवान के आत्मप्रदेशों का कंपन हमसे भी अधिक होता है। यथासमय सहज ही योगनिरोध होता है और अयोग केवली होकर वे मोक्ष में चले जाते हैं।

बंध के कारणरूप मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय व योग में सबसे पहले मिथ्यात्व का अभाव होता है; फिर क्रमशः अविरति, प्रमाद व कषायें और सबसे अंत में योग का अभाव होता है। परन्तु आज लोग उल्टी प्रक्रिया अपना रहे हैं। कहते हैं कि सबसे पहले हमें योगा के माध्यम से मन-वचन-काय को काबू में करना चाहिये और फिर कषायें छोड़ना चाहिये, कम करना चाहिये। उसके बाद प्रमाद से बचने की बात व अविरति का त्याग करने की बात की जाती है। मिथ्यात्व को छोड़ने की तो कोई बात ही नहीं करता है।

अरे भाई ! मिथ्यात्व के छूटे बिना अविरति, प्रमाद और कषायें नहीं छूटतीं, कम भी नहीं होती तथा योग तो १३वें गुणस्थान में केवली के भी होता है, यही कारण है उन्हें संयोग केवली कहा जाता है।

जिन योगों के अभाव के लिये केवली भी कुछ नहीं करते हम उन्हें ठीक करने के प्रयास की बात करते हैं। जिन योगों के रहते हुए केवलज्ञान हो जाता है, अनन्तसुख हो जाता है; उन योगों ने तेरा क्या बिगाड़ा है? जिस मिथ्यात्व को छोड़े बिना धर्म का आरंभ भी नहीं होता, रंचमात्र भी सुख-शांति नहीं मिलती; उस मिथ्यात्व को तो छोड़ने की तो बात नहीं करता। क्या हो गया है इस जगत को?

अरे भाई ! मिथ्यात्व को छोड़े बिना चतुर्थ गुणस्थान नहीं होता, पर अविरति तो पाँचवें-छठवें गुणस्थान में जाती है। इसीप्रकार प्रमाद सातवें गुणस्थान में, कषाय ग्यारहवें/बारहवें गुणस्थान में और योग चौदहवें गुणस्थान में जाते हैं।

बंध के और उसके कारणों के अभाव का क्रम तो यह है, पर यह अज्ञानी जगत योग साधना के नाम पर मन-वचन-काय रूप जड़ का कर्ता बनता है। जबतक आत्मा जड़ का, पर का, पररूप जड़ का कर्ता-भोक्ता बनता रहेगा, तबतक तो मिथ्यात्व ही नहीं जावेगा, अन्य अविरति आदि की तो बात ही क्या करना।

बंध चार प्रकार का होता है ह्य प्रदेशबंध, प्रकृतिबंध, स्थितिबंध और अनुभाग बंध। पौद्गलिक कार्माण वर्गणाओं का कर्मरूप परिणमित होकर आत्मप्रदेशों से एकक्षेत्रावगाररूप से बंधना प्रदेशबंध है और कर्मस्कंधों का मतिज्ञानावरणादि कर्मप्रकृतिरूप से विभक्त होना प्रकृतिबंध है।

इन प्रदेश और प्रकृतिबंध में मन-वचन-कायरूप तीन योगों के निमित्त से होने वाला आत्मप्रदेशों का परिस्पन्दन (हलन-चलन) निमित्त होता है।

भगवान आत्मा के साथ उक्त कर्मप्रकृतियों का संबंध कब तक रहेगा ह्य यह सुनिश्चित होना स्थितिबंध है और उन कर्मप्रकृतियों का रस परिपाक

किस रूप में होगा ह्य यह सुनिश्चित होना अनुभागबंध है।

ये स्थिति और अनुभागबंध कषायों (मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषाय) से होते हैं। जब मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषायों का पूर्णतः अभाव हो जाता है; तब केवली भगवान के १३वें गुणस्थान में योग से होनेवाले प्रकृति और प्रदेशबंध तो होते हैं, पर उन प्रकृति और प्रदेशों में मिथ्यात्वादि कषायभावों का अभाव होने से स्थिति और अनुभाग नहीं पड़ते, इसकारण वे कर्मपरमाणु अगले समय ही खिर जाते हैं; उनका कोई भी अच्छा-बुरा फल आत्मा को प्राप्त नहीं होता। अतः वह एकप्रकार से निरर्थक ही है। उक्त आस्रव को ईर्यापथ आस्रव कहते हैं और कषायों से होनेवाले आस्रव को संसार का बढ़ानेवाला होने से साम्प्रायिक आस्रव कहते हैं। इस साम्प्रायिक आस्रवपूर्वक होनेवाला बंध ही वास्तविक बंध है।

मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ पर चर्चा चल रही है। कल के प्रवचन में प्रथम अधिकार की विषय वस्तु पर प्रकाश डालते हुये कहा था कि यह ग्रंथ मोक्ष के मार्ग पर प्रकाश डालने वाला ग्रंथ है और अब दूसरे अधिकार को 'अब इस शास्त्र में मोक्षमार्ग का प्रकाश करते हैं' इस वाक्य से ही आरंभ करते हैं। इससे प्रतीत होता है कि मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ के नाम की सार्थकता उनके हृदय में बहुत गहराई से अंकित थी। मोक्ष के मार्ग का निर्माण तो तीर्थंकर भी नहीं करते, मार्ग तो स्वयं निर्मित है, उसके निर्माण की आवश्यकता नहीं है; पर अज्ञान से आच्छादित होने से उस पर सम्यग्ज्ञानरूपी प्रकाश डालने की आवश्यकता अवश्य है।

दूसरे अधिकार के आरंभ में ही वे इस बात पर जोर देते हैं कि वही उपदेश सार्थक है, जो मोक्ष के मार्ग पर प्रकाश डाले। तीर्थंकर भगवान भी ऐसा ही उपदेश देते हैं। समवशरण में बैठकर वे दुनियादारी की बातें नहीं सिखाते। सास-बहु को प्रेम से रहना चाहिए। ऐसी बातें करके वे राग करने का उपदेश नहीं देते। वे तो मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का अभाव कैसे हो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति कैसे हो ह्य यह समझाते हैं। आठवें अध्याय के आरंभ में भी वे इसी बात पर बल देते हैं।

मिथ्यात्वादि भावों से बंधे कर्म अपनी स्थिति (काल की मर्यादा) के अनुसार सत्ता में रहते हैं और अबाधाकाल पूर्ण होने पर उदय में आना आरंभ होते हैं, और तबतक आते रहते हैं कि जबतक उनकी स्थिति पूर्ण नहीं हो जाती। उदय में आते हुये वे कर्म अपनी अनुभाग शक्ति के अनुसार संयोग और संयोगी भावों के रूप में फलते हैं।

कर्मों के बंध, उदय और सत्ता की चर्चा के उपरान्त अब यह स्पष्ट करते हैं कि बंधते समय तो कोई कर्म फल निष्पन्न करते नहीं और सत्ता में पड़े कर्म पृथ्वी के ढले के समान अकार्यकारी हैं; मात्र उदयकाल में ही वे निमित्तरूप से कार्यकारी होते हैं। उदयकाल में भी अघातिया कर्मों के मात्र संयोगों के रूप में फलने से वे आगामी कर्मबंधनों के कर्ता नहीं हैं, निमित्त भी नहीं है। उनकी संतति नहीं चलती, वे तो संयोगरूप फल में निमित्त होकर नष्ट हो जाते हैं।

इसीप्रकार घाति कर्मों में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का उदय और इनके उदय से होनेवाले आत्मा के औदयिकभाव बंध के कारण नहीं हैं। इसप्रकार मोहनीय कर्म को छोड़कर शेष कर्मों का उदय और उनके निमित्त से होनेवाले संयोग और संयोगीभावरूप आत्मपरिणाम आगामी बंध के

निमित्तकारण भी न होने से उदय में आकर खिर जाने वाले हैं।

एकमात्र मोहकर्म ही ऐसा कर्म है कि जिसके उदय के निमित्त में मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषायें होती हैं; इसकारण हमें जो भी पुरुषार्थ करना है, वह सब मोहोदय से होनेवाले भावों का अभाव करने के लिये है।

पण्डित श्री टोडरमलजी ने कर्मबंध संबंधी प्रकरण पर संक्षिप्त में प्रकाश डालकर लिखा है कि इसकी विस्तार से चर्चा आगे चलकर कर्माधिकार में करेंगे। इसका आशय यह है कि वे इस मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ में कर्माधिकार के नाम से एक स्वतंत्र अधिकार लिखना चाहते थे। यह बात परम सत्य है कि यदि यह ग्रंथ पूरा हो गया होता तो उसमें सबकुछ नहीं तो बहुत कुछ तो होता ही; जो कुछ अभी उपलब्ध है, वह भी कुछ कम नहीं है। हम प्राप्त मोक्षमार्गप्रकाशक का तो स्वाध्याय करें नहीं और जो लिखा ही नहीं जा सका, उसके लिये, दुःख प्रकट करें ह्व यह तो वैसा ही है कि मरे पुत्र की बड़ी-बड़ी आँखें। बुन्देलखण्ड में कहावत है कि लोग जो पुत्र जिन्दा है, उसकी तो सही ढंग से देखभाल करते नहीं; पर जो मर गया, उसके गीत गाते रहते हैं। अतः हमारा तो यही अनुरोध है कि समय निकालकर इस उपलब्ध मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ का स्वाध्याय गहराई से अवश्य करें।

दूसरे अधिकार की विषयवस्तु की चर्चा चल रही है, जिसमें अभी तक अनादि से होनेवाले कर्मबंधन एवं उनके उदय में होनेवाले शरीरादि नोकर्मों का संयोग और अज्ञानादि तथा मिथ्यात्वादिभावों से आगामी कर्मबंधन की चर्चा हुई। अब यह बताते हैं कि ज्ञानावरणादि कर्मों के उदय में इस जीव की क्या दुर्दशा होती है? यद्यपि यह भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है, एक समय में लोकालोक के सभी पदार्थों को उनके गुण पर्यायों सहित देखे-जाने और प्रतिमय देखता ही रहे, जानता ही रहे ह्व ऐसी शक्ति से सम्पन्न है; तथापि ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मों के उदय के निमित्त से इस आत्मा की ऐसी स्थिति हो रही है कि यह जड़ पत्थर जैसा हो गया है।

यदि दर्शनावरण और ज्ञानावरण के अल्प क्षयोपशम से थोड़ा बहुत देखता-जानता है तो, उसमें पचासों शर्तें लगी रहती हैं। आँखों के बिना देख नहीं सकता, कानों के बिना सुन नहीं सकता; आँखें भी हों तो प्रकाश चाहिये। सभी शर्तें पूरी हो जावें, तो भी अकेले पुद्गल को देख-जान सकता है; वह भी सभी पुद्गलों को नहीं, उनके अनन्तवें भाग को, क्षेत्र-काल सम्बन्धी भी बहुत मर्यादायें हैं। समझ लीजिये एकेन्द्रियादि संसारी जीवों के दर्शन ज्ञान मात्र नाम के ही शेष रह गये हैं। निगोदिया जीवों के निरावरण होने से ज्ञान-दर्शन का मात्र स्वाभावांश ही रहता है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि ज्ञानावरण के उदय से जो अज्ञान और ज्ञानावरण के क्षयोपशम से जो ज्ञान है; ये दोनों ही आगामी कर्मों के बंधने में निमित्त नहीं है। औदायिक अज्ञान तो बंध का कारण है ही नहीं, पर जो क्षयोपशमिक ज्ञान है, वह भी स्वभाव का अंश होने से बंध का कारण नहीं है।

वस्तुतः बात यह है कि दर्शन-ज्ञान गुण और उनका परिणमन बंध का कारण नहीं है, बंध का कारण तो एकमात्र मोह के उदय में होने वाले मिथ्यात्वादि चार भाव ही हैं।

भाई ! इस बात को हिन्दी भाषा के पण्डित की बात समझकर उड़ा मत देना, पूरी गंभीरता से समझकर स्वीकारना, तेरा कल्याण अवश्य होगा। इसीप्रकार अंतराय और अघातिया कर्मों के सन्दर्भ में भी समझ लेना चाहिये।

दूसरे अधिकार में पण्डितजी ने प्रत्येक कर्म के उदय में होने वाली इस जीव की अवस्थाओं (दुर्दशाओं) का वर्णन विस्तार से किया, जो मूलतः पठनीय है। विस्तारभय से उक्त सभी की चर्चा करना यहाँ संभव नहीं है।

दर्शन मोहनीय अर्थात् मिथ्यात्व के उदय से यह जीव ज्ञानदर्शन-स्वभावी आत्मा को तो जानता नहीं, अपना मानता नहीं, उसमें अपनापन स्थापित करता नहीं; और अघातिया कर्मों के उदय में प्राप्त होने वाले शरीर, स्त्री, पुत्रादि, धन-मकानादि संयोगों में, नोकर्मों में अपनापन स्थापित करता है; इन्हें ही निजस्वरूप स्वीकार करता है। तथा चारित्र मोहनीय के उदय से उनमें ही इष्टानिष्ट बुद्धिपूर्वक जमता-रमता है; उन्हें ही अनुकूल-प्रतिकूल मानकर राग-द्वेष करता है, क्रोधादिरूप परिणमित हो रहा है। ये मिथ्यात्व और कषायभाव ही मुखरूप से बंध के कारण हैं, इसलिये जिन्हें संसार दुःखों से बचना हो; वे मिथ्यात्व से बचें और कषायभाव न करें।

जैसे यह सत्य है कि मरीज को परहेज से रहना चाहिये, बदपरहेजी नहीं करना चाहिये; तथापि सही परहेज क्या है और बदपरहेजी क्या है? यह जानना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है; क्योंकि परहेज और बदपरहेज को जाने बिना परहेज करना और बदपरहेजी छोड़ना संभव नहीं है। वैसे ही यह भी सत्य है कि भवरोग के रोगी को परहेज से रहना चाहिये, बदपरहेजी नहीं करना चाहिये; तथापि यह जानना बहुत जरूरी है कि भवरोग का परहेज क्या है और बदपरहेजी क्या है?

यह कहता है कि मुझे कर्मबंध हो रहा है; इसलिये मैंने मूंग की दाल खाना बंद कर दिया है। अरे भाई! मूंग की दाल से कौन से कर्मों का बंध होता है, जो तूने मूंग की दाल खाना छोड़ दिया है।

कर्म तो मिथ्यात्व और कषायभावों से बंधते हैं; उन्हें छोड़ने की तो बात ही नहीं करता और धर्म के नाम पर बाहरी क्रियाकाण्डों में उलझ कर रह जाता है। अरे भाई! परहेज मिथ्यात्वादिभावों से करना है और तू धर्म के नाम पर बाह्य क्रियाकाण्ड और शुभभावों में ही उलझ कर रह गया है।

अघातिया कर्मों के उदय में प्राप्त होनेवाले अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों को अज्ञानी जगत ने सुख-दुःख की सामग्री मान लिया है; परन्तु यह जीव दुःखी तो संयोगों में अपनत्व स्थापित करने से हुआ है, उन्हें निजरूप जानने से हुआ है, उन्हीं में एकत्वबुद्धिपूर्वक रमने-जमने से हुआ है और इन शरीरादि परद्रव्यों में एकत्व-ममत्व तो मिथ्यात्वकर्म के उदय में होता है।

संयोगी पदार्थ तो न सुखरूप, न दुःखरूप हैं; सुख-दुःख के कारण ही नहीं हैं। सुख-दुःख का मूल कारण तो हमारी मान्यता में ही समाहित हैं। आयुर्कर्म तो मात्र इसमें ही निमित्त है कि यह जीव किस गति में कितने काल तक रहेगा? नामकर्म शरीर की संरचना से संबंध रखता है और गोत्रकर्म तो लोकमान्य कुल और नीच कुल से संबंध रखता है। इनके कारण किसी के पेट में दर्द रहता हो ह्व ऐसी बात नहीं है। हमारा रंग काला हो या गोरा, इसके कारण हमें शारीरिक सुख-दुःख नहीं होते; वे तो मोहोदय के परिणाम हैं। मोह के बिना अघातिकर्म जरी-जेवरी के समान हैं।

अतः मोहनीय कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म और उनके उदय में प्राप्त होने वाले संयोग और औदायिक अज्ञानादिभाव न तो बंध के कारण हैं और न मूलतः सुख-दुःखरूप ही हैं। सांसारिक सुख-दुःख का मूल कारण तो एकमात्र मोह है, मोहनीय कर्म के उदय में होनेवाले परद्रव्यों में एकत्व-ममत्व और कर्तृत्व-भोक्तृत्व मिथ्यादर्शन और राग-द्वेषरूप कषायभाव हैं। ●

कोटा में आचार्य धरसेन विद्यालय का उद्घाटन

कोटा (राज.) : यहाँ मुमुक्षु आश्रम के प्रांगण में आचार्य धरसेन महाविद्यालय का भव्य उद्घाटन समारोह १५ अगस्त, ०८ को सम्पन्न हुआ।

कार्यक्रम का प्रारम्भ नित्य नियम पूजन से हुआ। झंडारोहण बाबूलाल, मुकेशकुमार, मनोजकुमार, बोरखंडिया परिवार बूंदी ने किया। तत्पश्चात् पण्डित प्रदीपजी झांझरी उज्जैन के प्रवचनोपरान्त ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल का मंगलमय प्रवचन हुआ। अपने प्रवचन में डा. भारिल्ल ने उपाध्याय एवं शास्त्री डिग्री की उपयोगिता पर बल देते हुये कहा कि समाज में यही विद्यार्थी विद्वान बनकर मनुष्य जन्म की सार्थकता बतायेंगे एवं नर से नारायण बनाने में कार्यकारी होंगे।

इस अवसर पर आयोजित सभा की अध्यक्षता श्री महीपालजी ज्ञायक बाँसवाड़ा ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्री अशोककुमारजी लुहाड़िया मंगलायतन एवं श्री राजकुमारजी शास्त्री बाँसवाड़ा तथा विशिष्ट अतिथि के रूप में सर्वश्री सत्यनारायणजी दाधीच, ज्ञानचंदजी जैन, कमलजी बोहरा, मदनलालजी वकील बून्दी, वीरन्द्र हरसोरा एवं बालचंदजी पटवारी आदि विराजमान थे।

मंगलाचरण नृत्य के माध्यम से कु. नृत्या जैन ने किया। स्वागत उद्बोधन संस्थापक ट्रस्टी प्रेमचंदजी बजाज ने किया। विद्यालय के विद्यार्थियों का परिचयपण्डित मनीषकुमारजी शास्त्री ने करवाया।

इस अवसर पर वरिष्ठ नागरिक श्री मदनलालजी वकील, मुमुक्षु मण्डल के अध्यक्ष श्री ज्ञानचंदजी जैन एवं मुमुक्षु समाज के संरक्षक श्री राजेन्द्रकुमारजी बज ने अपने विचार व्यक्त किये।

इसी मंगल प्रसंग पर कोटा संभागीय अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन का गठन किया गया। जिसमें अनेकों राष्ट्रीय व प्रांतीय पदाधिकारियों के साथ शपथ ग्रहण का कार्य डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल ने कराया। कोटा संभाग संगठन प्रभारी विनोदकुमार सेठिया, मंत्री पण्डित जयकुमारजी जैन बाँरा आदि अनेक लोगों ने शपथ ग्रहण की। आचार्य धरसेन दिगम्बर जैन सिद्धांत विद्यालय का उद्घाटन डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, श्री महीपालजी ज्ञायक, पण्डित प्रदीपजी झांझरी आदि ने किया।

अंत में आभार प्रदर्शन श्रीमती सुनीता बजाज, ट्रस्टी मुमुक्षु आश्रम ने किया। सम्पूर्ण कार्यक्रम का संचालन पण्डित रतनचन्द चौधरी, निदेशक मुमुक्षु आश्रम ने किया।

१७० तीर्थंकर विधान एवं आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर सानन्द सम्पन्न

रतलाम (म. प्र.) : श्रीमती तेजकुंवरबाई धर्मपत्नी स्व. श्री शांतिलालजी पाटनी की मंगल भावना से प्रेरित होकर पाटनी परिवार द्वारा दिनांक ९ से १३ अगस्त २००८ तक पाँच दिवसीय आध्यात्मिक कार्यक्रम स्थानीय श्री दिगम्बर जैन आदिनाथ चैत्यालय में बड़ी धूमधाम एवं उत्साहपूर्वक मनाया गया। सभी कार्यक्रम पण्डित कमलचंदजी पिड़ावा के कुशल निर्देशन में सम्पन्न हुये।

इस अवसर पर १७० तीर्थंकर मण्डल विधान की पूजन विधानाचार्य पण्डित श्री अश्विनजी नानावटी नौगामा तथा पिड़ावा की संगीत मंडली द्वारा संगीत की मधुर स्वरलहरियों के साथ कराई गई। दोपहर में प्रवचनसार की गाथा ६ से १० तक की कक्षा एवं रात्रि में मोक्षशास्त्र के प्रथम अध्याय की कक्षा पण्डित श्री कमलचंदजी पिड़ावा एवं बालकक्षाएँ पण्डित श्री अश्विनजी द्वारा ली गई।

इसके अतिरिक्त दोपहर एवं रात्रि में पण्डित श्री राजकुमारजी शास्त्री बाँसवाड़ा, पण्डित अनिलकुमारजी पाटोदी बड़नगर, पण्डित कमलकुमारजी बोहरा कोटा तथा स्थानीय विद्वान पण्डित पद्मकुमारजी अजमेरा के प्रवचनों का लाभ भी समाज को मिला। रात्रि में आयोजित सुन्दर आध्यात्मिक सांस्कृतिक कार्यक्रमों ने दर्शकों का मन मोह लिया।

बैंगलोर में शिक्षण-शिविर

बैंगलोर (कर्नाटक) : यहाँ श्री दिगम्बर जैन ट्रस्ट, रंगास्वामी टेम्पल स्ट्रीट में दिनांक २ से ९ अक्टूबर, ०८ तक धार्मिक शिक्षण-शिविर का आयोजन किया जायेगा। शिविर का आयोजन कन्नड़ और हिन्दी दोनों भाषाओं में रहेगा। अतः इस समय दिनांक ३० सितम्बर से १० अक्टूबर तक धर्मशाला में ठहरने की व्यवस्था बाहर से आनेवाले अन्य यात्रियों को नहीं रहेगी। शिविरार्थी सादर आमंत्रित हैं।

स्लिपडिस्क रोगी ध्यान दें !

सम्पूर्ण उपचार बिना दवा, बिना कसरत, बिना चीरफाड़, बिना आराम किए विश्व की नवीनतम तकनीक माइक्रो एक्यूप्रेसर द्वारा शीघ्र उपचार।

डॉ. पीयूष त्रिवेदी (मो.) 09828011871

गोल्ड मेडलिस्ट, बी.ए. एम.एस., एम.डी. (एक्यू.)

डिप्लोमा इन योगा, सुजोक (मास्को) एफ.ए.आर.सी. एस. (लंदन)

मेडिनोवा पोली क्लीनिक, केसरगढ, जे.एल.एन. मार्ग, जयपुर

समय : सायं 6 बजे से 9 बजे तक, रविवार को प्रातः 8 से 12 बजे तक

नोट - एक्यूप्रेसर सेवा समिति द्वारा 300 से अधिक निःशुल्क शिविर आयोजित।

अन्य रोग : जोड़ों का दर्द, गर्दन का दर्द, मोटापा, मायोपैथी, मानस

विकृतियां, मधुमेह तथा उच्च रक्तचाप आदि की सफल चिकित्सा।

प्रति,



सम्पादक : पण्डित रतनचन्द भारिल्ल शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.

प्रबन्ध सम्पादक : पण्डित संजीवकुमार गोधा, डबल एम.ए. (जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन; इतिहास), नेट, एम.फिल (जैन दर्शन)

प्रकाशक एवं मुद्रक : ब्र. यशपाल जैन द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति

कम्प्यूटर्स, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें -

ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

फोन : (0141) 2705581, 2707458

E-Mail : ptstjaipur@yahoo.com फैक्स : (0141) 2704127